Bheeshm Sahanee Kee Kahaniyon Mein Vrddh Vimarsh

भीष्म साहनी की कहानियों में वृद्ध–विमर्श

रश्मि कुमारी , शोधार्थी, हिन्दी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा।

शोध सारांश

आधुनिक हिंदी साहित्य को विमर्शों का साहित्य कहा गया है। पुनर्जागरण काल से ही हिंदी साहित्य पर पाश्चात्य विमर्श अपनी छाप छोड़ते नजर आते हैं। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, वृद्ध विमर्श आदि तमाम प्रकार के विमर्शों को अलग–अलग रूप में हम पाश्चात्य साहित्य में देख सकते हैं। हिंदी साहित्य में वृद्ध विमर्श की शुरुआत तब हुई जब साहित्यकारों ने संवेदनात्मक रूप से यह महसूस किया कि संयुक्त– परिवारों की परंपरा अब धीरे–धीरे भारतीय समाज से भी गायब हो रही है। विशेषकर आजादी के बाद उभरा नया उच्च–मध्यम वर्ग इस विमर्श के केंद्र में रहा है। तमाम हिंदी साहित्यकारों ने उस परिवर्तन को महसूस किया कि जो बुजुर्ग कल तक घर के नीति–निर्माता थे उन्हें बिल्कुल स्वाभाविक रूप से आज उनके पद से मुक्त किया जा रहा है। और सिर्फ पद–मुक्त ही नहीं किया जा रहा, बल्कि हाशिये पर भी ढकेला जा रहा है। गाँव छोड़ कर नौकरी–व्यवसाय करने शहर आया वह वर्ग जिसकी महत्वाकांक्षाएं असीमित थीं, जिसके लिए पैसा और पद ही संसार का सबसे बड़ा सत्य था, जिसे तथाकथित हाई–क्लास–सोसाइटी में खुद को स्थापित करना था और जिसे अपने ऊपर चिपके गँवई टैग से मुक्ति पानी थी। उन्हें केंद्र में रखकर कई कहानीकारों ने कहानियाँ लिखीं। प्रेमचन्द, नागार्जुन, भीष्म साहनी, उषा प्रियंवदा, काशीनाथ सिंह आदि कहानीकारों ने भिन्न–भिन्न दृष्टि से बुजुर्गों के जीवन के अंतर्विरोधों, समस्याओं और चुनौतियों को अपनी कहानियों के माध्यम से समाज तक पहुँचाने की कोशिश की है। भीष्म साहनी ने भी वृद्धों को केंद्र में रखकर कुछ कहानियाँ लिखीं, जिसमें **चीफ की दावत** एक ऐसी कहानी है जिसने हिंदी में **वृद्ध–विमर्श** को एक निर्णायक मोड़ दिया। इस शोध–आलेख में भीष्म साहनी की कहानियों के माध्यम से भारतीय बुजुर्गों के उस स्पेस को तलाशने की कोशिश की गई है जो धीमे–धीमे खत्म ही होता चला जा रहा है।

शोध आलेख

वृद्ध विमर्श के संदर्भ में **भीष्म साहनी की चीफ की दावत** की आलोचकीय जगत में विशेष चर्चा होती है पर सच्चाई यह है कि उन्होंने संकुचित होते परिवारों में टूट रहे वृद्धों पर कई कहानियाँ लिखी हैं। **यादें** उनकी एक ऐसी ही कहानी है जिसमें दो वृद्धाओं के जीवन–चक्र का चित्रण करते हुए वे यह दिखलाते हैं कि आज वृद्धों के जीवन में कितना अंधेरा है। कहानी का यह प्रसंग दृष्टव्य है– "नहीं, बच्चा, अब बहुत देर हो गयी है। अंधेरे से मैं बहुत डरती हूँ। और घुटनों से हाथों को दबाये, हाय रामजी कहकर, उठ खड़ी हुई, मैं तीन बार हड्डियाँ तुड़वा चुकी हूँ, बच्चा! एक दिन सड़क पर जा रही थी। पीछे से किसी साइकिलवाले ने आकर टक्कर मार दी। मैं औंधे मुँह जा गिरी। भला हो लोगों का जो उन्होंने मुझे खाट पर डालकर घर पहुँचा दिया।" (1) इस कथन के पीछे छिपे वृद्धा की अंतर्मन की व्यथा को समझा जा सकता है। एक भरेपूरे परिवार की वृद्ध औरत नितांत अकेले अपने सभी कार्य पूरा करती है। स्पष्ट है कि उसकी जिंदगी के अंधेरे को दूर करने वाला उसे कोई नहीं दिखता। कहानी की यही पीड़ा आज के समाज में वृद्धों की स्थिति को स्पष्ट करती है। असल में वृद्ध विमर्श से सम्बंधित कहानियाँ आज के समाज के समक्ष यह प्रश्न खड़ा करती हैं कि जिन बुजुर्गों की वजह से आज हमारा अस्तित्व है क्या उनके लिए हमारी सम्वेदनाएँ बिल्कुल मर चुकी हैं ? भीष्म साहनी की इन कहानियों की विशेषता यह है कि जब उन्हें लगता है कि

सिर्फ प्रश्न करने से बात नहीं बनेगी तब वे नई पीढ़ी को पिछली पीढ़ी के अस्तित्व और त्याग की तस्वीर दिखा कर उनकी संवेदनाओं को जगाने का प्रयास करते हैं। ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं– "तेरी माँ ने कैसे–कैसे दिन देखे हैं, बेटा, तुझे क्या मालूम ? चार बहनों के बाद तू आया था। हर बार जब तेरी माँ प्रसूत में होती, तो तेरा ताऊ बाहर खाट बिछाकर बैठ जाता और हर बार गालियाँ बकता हुआ उठ जाया करता। बड़ा गुस्सैल आदमी था। एक–एक कार चारों का दाना–पानी दुनिया से उठ गया। तब तू आया। सलामत रहो बेटा! जुग–जग जिओ!" (2) यहाँ ध्यान देने योग्य यह है कि यह उद्‌गार उस वृद्धा के हैं जो अपनी पुरानी सहेली को अस्वस्थ और दयनीय अवस्था में देख कर अपने दयनीय जीवन का मूल्यांकन करते हुए उस पुत्र को यह सब बता रही है जिसने अपनी माँ को उसके हाल पर एक अंधेरे कमरे में बंद छोड़ दिया है। समकालीन दौर में जिस प्रकार समाज में वृद्धों को हाशिये पर डाल दिये गया है उसका विद्रूप चित्रण करते हुए वे लिखते हैं– "कोठरी की सामनेवाली दीवार के सहारे एक बूढ़ी औरत खाट पर पांव लटकाये बैठी थी। पर वह लखमी को अभी तक नजर नहीं आयी। कोठरी में खाट के पायताने के साथ जुड़ा हुआ एक कमोड रखा था और साथ में एक टीन का डब्बा। बुढ़िया ने एक पटरे पर पाँव रखे थे। टाँगों पर, जो सूजन के कारण बोझिल हो रही थीं, दो–दो जोड़े फटे मोजों के चढ़े थे। कोठरी में पेशाब, मैले कपड़ों और बुढ़ापे की गंध आ रही थी।"(3) स्पष्ट है कि यह चित्रण आज के समाज का सच है। न्यूक्लियर फैमिली के इस युग में जहाँ मकानों का क्षेत्रफल कम हो रहा है वहीं हृदय की परिधि भी संकुचित होती जा रही है। इन पंक्तियों से यह प्रतीत होता है कि उस बीमार माँ की सेवा–सुश्रुषा तो नहीं ही होती, लगता है प्रतिदिन उन्हें कोई देखने भी नहीं जाता। अगर उसकी मृत्यु उस काल–कोठरी में भी हो जाये तो परिवारवालों को तब पता चलेगा जब तीन–चार दिन बाद मृत शरीर से दुर्गंध निकलनी शुरू होगी और फैलेगी। ऐसे में आज माँ–बाप के लिए भवन की परित्यक्त काल कोठरी से ज्यादा कोई जगह नहीं बचती। वे रामलाल की बीमार वृद्ध माँ के रहने की जगह का उल्लेख करते हुए लिखते हैं– "कोठरी के बाहर निकलते हुए, रामलाल ने बिजली बुझा दी और दरवाजा बंद कर दिया। कोठरी में घुप्प अंधेरा छा गया और सूना मौन फिर चारों ओर से घिरने लगा।"(4) स्पष्ट है कि वृद्धों की पीड़ा के हर स्तर पर उन्होंने प्रकाश डाला है। जिस अवस्था में वृद्धों को पूरे परिवार का साथ चाहिए, उस अवस्था में खुद का पुत्र रहने वाले कमरे तक को अंधेरा कर ऐसे भूल जाता है जैसे श्माँश का कोई अस्तित्व ही न हो।

उच्च मध्यम वर्गीय समाज के वृद्धों का घोर एकाकीपन आज के युग की बड़ी समस्या है। भीष्म साहनी की कहानी **'कुछ और साल'** में अवकाशप्राप्त सुपरिटेंडेंट मधुसूदन के बुढ़ापे का चित्रण करते हुए वे लिखते हैं– "मधुसूदन की पत्नी बरसों पहले मर चुकी है। दोनों बेटियों के ब्याह हो चुके हैं, एक नागपुर में रहती है, दूसरी कलकत्ता में। बड़ा बेटा वकील है, इसी शहर में रहता है। कभी–कभी पत्नी की घुड़कियों के बावजूद बाप से मिलने आ जाता है। मंझला बेटा फौज में है और आजकल नेपाल में है। छोटा बेटा जंगलात के महकमे में अफसर है और आजकल देहरादून में है।"(5) स्पष्ट है कि जिन लोगों के लिए जवानी के दिनों में लोग सम्पत्ति इकट्ठी करते हैं वे तथाकथित अपने भी अपने वृद्धों की सुध लेने को तैयार नहीं दिखते। एक शहर में रहते हुए भी पिता और पुत्र एक साथ नहीं रहते इस द्वंद्व को भी समझना जरूरी है। असल में यहाँ पिछली पीढ़ी और अगली पीढ़ी के बीच का वैचारिक द्वंद्व दिखता है जिसकी वजह से पिता–पुत्र एक साथ नहीं रह सकते। इससे भी ज्यादा विचारणीय यह है कि पिता से मिलने के लिए पुत्र को बीबी की घुड़कियों को सहना पड़ता है। भीष्म साहनी इस तीखे प्रहार के साथ आज की सच्चाई बयान करते दिखते हैं। इस कहानी के उत्तरार्ध की पंक्तियाँ सहृदय पाठक को यह सोचने पर मजबूर कर देती हैं कि क्या यह समाज अपने बुजुर्गों के प्रति तनिक भी सहानुभूति नहीं दिखा सकता? क्या यह समाज अपने वृद्ध अभिभावकों के प्रति थोड़ा भी ऋणी नहीं है? वे वृद्ध मधुसूदन के नितांत अकेलेपन के विषय में लिखते हैं– "आरामकुर्सी पर बैठकर उन्होंने ताश के पत्ते निकाले और तिपाई पर बिछाने लगे। एक–एक करके सात पत्ते उलटे बिछाये गये, फिर एक पत्ते पर सीधा पत्ता रखा और बाकी छः पर उलटे। काले गुलाम के नीचे रखने के लिए लाल दहला भी निकल आया था। मधुसूदन की बढ़ी उँगलियाँ एक–एक करके पत्तों को उठाने और पेशेन्स के खेल के मुताबिक अपनी–अपनी जगह पर रखने लगीं।"(6) यह चित्रण एक वृद्ध के अकेलेपन की पराकाष्ठा दर्शाता है और समाज के सामने तमाम प्रश्न छोड़ जाता है।

खून का रिश्ता और **चाचा मंगलसैन** में वृद्ध–विमर्श का आर्थिक पक्ष देखा जा सकता है। आत्मीय रिश्तों के बीच पूंजीवादी व्यवस्था जिस ढंग से दरार डाली है वह इन कहानियों में स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होता है। बेकुसूर वृद्ध चाचा पर चोरी का इल्जाम लगाकर उसकी इज्जत तार–तार करना यह दिखलाता है कि आज के इस वस्तुवादी युग में पैसे के सिवा अपना सगा कोई नहीं है। वे लिखते हैं– "मंगलसेन गिरा भी अजीब ढंग से। धम्म–से जमीन पर जो पड़ा तो उकड़ूँ हो गया, और पगड़ी उतरकर गले में आ गयी। मनोरमा अपनी हँसी रोके न रोक सकी।"(7) ये पंक्ति आज के संवेदनहीन समाज की

पराकाष्ठा दिखलाती है। सगे चाचा का गश खा कर गिरना और सगी भतीजी का उसे देख कर हँसना कितना विद्रूप चित्रण है यह वही समझ सकता है जिसने इस पीड़ा को महसूस किया हो। इस प्रसंग का अन्वेषण करते हुए वहाँ की समाजार्थिक परिस्थिति को नजरंदाज नहीं किया जा सकता है। वृद्ध चाचा चूँकि गरीब था इसीलिए उसके साथ पूरे घरवाले दोयम दर्जे का व्यवहार करते हैं। चाचा मंगलसैन कहानी के मुख्य पात्र चाचा की हैसियत के आधार पर उनका भतीजा उन्हें पहले तो बहुत द्वंद्व के बाद उन्हें बस्ती से अपने घर लाता है लेकिन बहुत जल्दी ही यह कहता है– "चाचा मंगलसैन का व्यवहार सही नहीं निकला। गलियों में रहने वाला आदमी आदमी भला बँगले का रहन–सहन क्या जाने! ज्यों ही चाचा ने तंदुरुस्ती पकड़ी, कि अपने रंग दिखाने लगा। वक्त–बेवक्त बैठक में घुस आता। किसी वक्त भी उसकी छड़ी की पट्–पट् बरामदे में सुनायी पड़ने लगती। थूकता–खँखरता हुआ आता।"(8) स्पष्ट है रिश्ता चाहे खून का ही क्यों न हो पर गलियों वाले चाचा की बंगले में कोई जगह नहीं होती। सच्चाई तो यह भी है कि आज की पीढ़ी ने संस्कार अपने बुजुर्गों से ही ग्रहण किये हैं इसके बावजूद वे उनके आचार–व्यवहार को अनसिविलाइज्ड मानते हैं, और उनके अपने घर में होने को अपनी इज्जत पर बट्टा लगना समझते हैं। उच्च–मध्यम वर्गीय परिवारों में आज वृद्धों को इस कदर अपमानित किया जाता है कि वे किसी प्रकार अपनी इज्जत और जान बचाकर वहाँ से निकल जाते हैं और फिर कभी वापस लौटना नहीं चाहते। चाचा मंगलसैन जब पुनः अपने भतीजे को अपनी बस्ती में देखते हैं तो भयाक्रांत आवाज में कह पड़ते हैं– "मैं उस मरण–कोठरी में नहीं जाऊँगा। वीरजी, आप बहुत अच्छे हो, भगवान तुम्हें सलामत रखें, पर मैं नहीं जाऊँगा। तुम मुझे बख्श दो।"(9) स्पष्ट है, आज की इस सामाजिक त्रासदी से पूरा वृद्ध समुदाय पीड़ित है और आज के हिंदी साहित्य में इसी का यथार्थ चित्रण दिखता है।

भीष्म साहनी की कालजयी कहानी **चीफ की दावत** हिंदी कथा साहित्य में जारी वृद्ध–विमर्श के सभी आयामों को अपने भीतर समेटती है। कहा जा सकता है कि चीफ की दावत में वृद्ध–विमर्श का उत्कर्ष दिखाई पड़ता है। माँ के प्रति मिस्टर शामनाथ का जो वस्तुवादी दृष्टिकोण है वह आज के समाज की घृणित सच्चाई बयाँ करता है। वृद्ध माँ अपने पुत्र के लिए एक समस्या बन चुकी है क्योंकि उसके दफ्तर का चीफ आज उसके घर रात्रिभोज के लिए आ रहा है। ऐसी स्थिति में माँ के किसी भी कृत्य से मसलन खर्राटे लेने से, उकड़ूँ बैठने से, बेतरतीब कपड़े पहनने से चीफ के सामने मिस्टर शामनाथ की इज्जत की मिट्टी पलीद हो सकती थी। वे समस्या का निदान करते हुए कहते हैं– "और माँ, हमलोग पहले बैठक में बैठेंगे। उतनी देर तुम यहाँ बरामदे में बैठना। फिर जब हम यहाँ आ जायें, तो तुम गुसलखाने के रास्ते बैठक में चली जाना।"(10) इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि आज की पीढ़ी पिछली पीढ़ी के साथ संवेदनात्मक स्तर पर जुड़ी नहीं दिखती। कहानी के हर स्तर पर माँ की पीड़ा, संत्रास, दहशत और भय स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। जो माँ चीफ के आने से पहले तक समस्या थी वही तब जरूरी बन जाती है जब चीफ को उसकी बनाई फुलकारी पसंद आ जाती है। स्पष्ट है, आत्मीय रिश्तों के बीच हो रहे विचलन को भीष्म साहनी ने इस कहानी में यथार्थ रूप से प्रस्तुत किया है। माँ की पीड़ा की पराकाष्ठा इन पंक्तियों में दिखती है– "नहीं बेटा, अब तुम अपनी बहू के साथ जैसा मन चाहो रहो। मैंने अपना खा–पहन लिया। अब यहाँ क्या करूँगी। जो थोड़े दिन जिन्दगानी के बाकी हैं, भगवान का नाम लूँगी। तुम मुझे हरिद्वार भेज दो!"(11) वृद्ध माँ की व्यथा और दर्द की इन पंक्तियों में पराकाष्ठा नजर आती है। वह पुत्र जिसकी पढ़ाई के लिए उसने अपने गहने तक बेच दिए, बस इस आस में कि यही तो मेरे बुढ़ापे की लाठी बनेगा उसी ने जब माँ की ओर से मुँह फेर लिया तब अपने सारे दुख को समेट कर वृद्ध माँ यह कहने को विवश होती है। यह आज का नग्न यथार्थ है और भीष्म साहनी ने इसे अपनी वृद्ध–विमर्श सम्बंधित कहिनियों में स्वीकारा है।

निष्कर्ष

निष्कर्षरूप से कहा जा सकता है कि हिंदी कहानी में जो वृद्ध–विमर्श का दौर शुरू हुआ उसमें वृद्ध मन की सम्वेदनाओं को अपनी कहानियों में कई साहित्यकारों ने उकेरा है परंतु भीष्म साहनी ने जितनी प्रखरता और प्रभावकारी ढंग से वृद्धों की दयनीय अवस्था का चित्रण किया है उसके करीब भी कोई साहित्यकार नहीं पहुँच सका है। निःसन्देह चीफ की दावत केवल हिंदी में ही नहीं बल्कि समग्र भारतीय भाषाओं के साहित्य में वृद्ध–विमर्श सम्बंधित कहानियों में शीर्ष स्थान पाने की हकदार दिखाई पड़ती है। वृद्धावस्था के तमाम समाजार्थिक पक्षों को जिस सूक्ष्मता से भीष्म साहनी ने चित्रित किया है वह इस समाज की कलई खोलने वाला जान पड़ता है। महत्त्वपूर्ण यह है कि ऐसी घटनाएँ प्रतिदिन आज भी हमारी सुर्खियों में बनी हुई हैं और हमारे आस–पास घट रही हैं। आज से दशकों पहले लिखी भीष्म साहनी की वृद्ध–विमर्श सम्बंधित कहानियाँ इसीलिए

प्रासंगिक हैं क्योंकि वृद्धों को जो सम्मान मिलना चाहिए वह आज भी नहीं मिल रहा, सच तो यह है कि आज के उपभोक्तावादी दौर में वृद्धों की स्थिति पहले की तुलना में और खराब ही हुई है।

सन्दर्भ सूची

1) साहनी, भीष्म – प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल पपरबैक्स, पन्द्रहवाँ संस्करण, पृ०48

2) वही, पृ०47

3) वही, पृ०43

4) वही, पृ०49

5) वही, पृ०59

6) वही, पृ०64

7) वही, पृ०35

8) वही, पृ०160

9) वही, पृ०173

10) वही, पृ०16

11) वही, पृ०22